

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 40 — अक्रूरजी की स्तुति

5 October 2026



कालिन्दी के जल में हाथ जोड़े खड़े अक्रूरजी एक ऐसा स्तोत्र गाते हैं जो सृष्टि के मूल से आरम्भ होकर प्रभु के चरणों में विश्राम पाता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध का यह चालीसवाँ अध्याय अपने आगे-पीछे के अध्यायों से भिन्न है: यहाँ किसी असुर का सामना नहीं होता। एक भक्त नदी में खड़ा होकर बोलता है, और उसके शब्द भागवत के महान् स्तोत्रों में गिने जाते हैं — जिनकी स्तुति विराट् है, स्वीकारोक्ति निष्कपट, और अन्त शरण की एक पुकार।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)
- अध्याय: 40 (चत्वारिंश अध्याय)

- अध्याय शीर्षक: अक्रूरजी की स्तुति
- मुख्य वक्ता: अक्रूरजी (श्री शुकदेव गोस्वामी की कथा के भीतर)
- मुख्य श्रोता: जल में प्रकट हुए परम प्रभु (कथा राजा परीक्षित को सुनाई जा रही है)
- मुख्य स्थल: मथुरा के मार्ग पर कालिन्दी (यमुना) का पवित्र कुण्ड
- केंद्रीय विषय: अक्रूरजी का स्तोत्र — समस्त कारणों के कारण, उपासना के हर मार्ग के लक्ष्य, और असहाय हृदय के एकमात्र आश्रय प्रभु
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 40, श्लोक 1-30
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण संस्करण), दशम स्कन्ध

पूर्व अध्याय का संदर्भ

श्रीकृष्ण और बलराम को मथुरा ले जाते हुए अक्रूरजी दोपहर में कालिन्दी के तट पर रुके और मध्याह्न-संध्या के लिए कुण्ड में उतरे। डुबकी लगाकर गायत्री का जप करते हुए उन्होंने जल में दोनों भाइयों को देखा; फिर शेष की शय्या पर चतुर्भुज प्रभु को, जिनकी चारों ओर से आराधना हो रही थी। विह्वल होकर, हाथ जोड़े, वे बोलने लगे।

समस्त कारणों के कारण

अक्रूरजी का पहला शब्द कोई याचना नहीं, एक प्रणाम है। वे सामने विराजमान प्रभु को नारायण कहकर पुकारते हैं — वह आदि पुरुष जो कभी क्षीण नहीं होते, हर कारण के पीछे का कारण — जिनके नाभि-कमल से ब्रह्मा प्रकट हुए और जिनसे यह संसार उत्पन्न हुआ।

अक्रूर उवाच

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ।

यन्नाभिजातादरविन्दकोषाद् ब्रह्माविरासीद् यत एष लोकः ॥ १ ॥

akrūra uvāca nato 'smy ahaṁ tvākhila-hetu-hetuṁ nārāyaṇaṁ pūruṣaṁ ādyam avyayam yan-nābhi-jātād aravinda-koṣād brahmāvirāsīd yata eṣa lokah

अर्थ: अक्रूरजी ने प्रार्थना की: मैं आपको प्रणाम करता हूँ, हे नारायण, आदि और अविनाशी पुरुष, समस्त कारणों के कारण, जिनके नाभि से उत्पन्न कमल-कोष से ब्रह्मा प्रकट हुए और जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है। (स्कन्ध 10, अध्याय 40, श्लोक 1)



अक्रूरजी का स्तोत्र अविनाशी आदि पुरुष नारायण को प्रणाम से आरम्भ होता है, जिनके नाभि-कमल से ब्रह्मा प्रकट हुए और जिनसे सारी सृष्टि निकली (श्लोक 1)।

इस आरम्भ से वे वह सब कुछ समेटकर प्रभु के भीतर रख देते हैं जिससे ब्रह्माण्ड बना है: पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, और वह अहंकार जिससे तत्त्व उपजते हैं; महत्तत्त्व; प्रकृति और उसके परे का आत्मा; मन, इन्द्रियाँ, उनके विषय और उनके अधिष्ठाता देवता। इनमें से कोई अपने बल पर खड़ा नहीं; सब प्रभु के श्रीविग्रह से निकले हैं और उनके अंग-जैसे हैं। और तब अक्रूरजी वह बात कहते हैं जो उनके स्तोत्र को निष्कपट रखती है। ये उत्पन्न हुए कारण प्रभु के स्वरूप को नहीं जान सकते, क्योंकि वे जड़ हैं और प्रभु चेतन; और तीनों गुणों में बँधे ब्रह्मा भी गुणों से परे उस सत्य को नहीं जानते।

उपासना का हर मार्ग उन्हीं तक पहुँचता है

सृष्टि को प्रभु के चरणों में रखकर अक्रूरजी उन मार्गों की ओर मुड़ते हैं जिनसे मनुष्य उन्हें खोजते हैं। साधु योगी उन्हें सीधे परम पुरुष और नियन्ता के रूप में भजते हैं — देह के अंगों में बसे, सब भौतिक रूपों में व्याप्त, देवताओं के अधीश्वर। यज्ञपरायण ब्राह्मण उन्हीं प्रभु की तीनों वेदों के विधान से, देवताओं के अनेक नामों के द्वारा आराधना करते हैं। कर्म त्यागकर अन्तर में शान्त हुए ज्ञानी उन्हें ज्ञानस्वरूप मानकर ज्ञान-यज्ञ से पूजते हैं। दीक्षा से संस्कृत और उनमें लीन अन्य जन उन्हें अनेक रूपों में या एक रूप में, स्वयं प्रभु की बताई विधि से भजते हैं।

शिव के उपासक उन्हें शिव के रूप में, शिव के दिखाए मार्ग से, अनेक आचार्यों के भेदों सहित पूजते हैं। और जो अन्य देवताओं से जुड़े हैं और उन्हें प्रभु से भिन्न मानते हैं, वे भी उन्हीं एक को भजते हैं, क्योंकि वे सर्वशक्तिमान प्रभु ही सब देवताओं के आश्रय हैं। फिर अक्रूरजी इस व्यापक विचार को एक ऐसा चित्र देते हैं जिसे बालक भी याद रख सके।

यथाद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ।

विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ॥ १० ॥

yathādri-prabhavā nadyaḥ parjanyaṁpūritāḥ prabho viśanti sarvataḥ sindhum tadvat tvāṁ gatayo 'ntataḥ

अर्थ: हे प्रभो, जैसे पर्वतों से निकली और वर्षा से भरी नदियाँ चारों ओर से समुद्र में प्रवेश करती हैं, वैसे ही सभी मार्ग अन्त में केवल आप तक आ पहुँचते हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 40, श्लोक 10)



जैसे पर्वतों में जन्मी और वर्षा से भरी नदियाँ हर दिशा से समुद्र तक पहुँचती हैं, वैसे ही योगी, ब्राह्मण, ज्ञानी और शिव-भक्त — उपासना का हर मार्ग — एक ही प्रभु तक आ पहुँचता है (श्लोक 10)।

गुण, साक्षी और उनके भीतर बसे लोक

अक्रूरजी आगे कहते हैं कि सत्त्व, रज और तम प्रभु की अपनी प्रकृति के गुण हैं, और स्थावर वृक्ष से लेकर ब्रह्मा तक हर देहधारी उन्हीं में पिरोया हुआ है। प्रभु को वे एक और प्रकार का प्रणाम करते हैं: वे जिनकी दृष्टि कभी उलझती नहीं, जो सबके आत्मा हैं, हर मन के साक्षी हैं। अविद्या से चला गुणों का यह प्रवाह उन्हें बहा ले जाता है जो स्वयं को देव, मनुष्य या पशु मानते हैं; साक्षी को वह छू भी नहीं पाता।

फिर वे उस विराट् रूप का स्मरण करते हैं जिसमें उपासक प्रभु का ध्यान करते हैं। अग्नि उनका मुख है और पृथ्वी उनके चरण; सूर्य उनका नेत्र, आकाश उनकी नाभि, दिशाएँ उनके कान; स्वर्ग उनका मस्तक, देवगण उनकी भुजाएँ, समुद्र उनका उदर, वायु उनका प्राण और बल। वृक्ष और औषधियाँ उनके रोम हैं, मेघ उनके केश, पर्वत उनकी अस्थियाँ और नख; दिन-रात उनकी पलकों का झपकना, ब्रह्मा उनकी सृजन-शक्ति और वर्षा उनका वीर्य। उस अविनाशी पुरुष के भीतर, अक्रूरजी कहते हैं, सारे लोक रखे हुए हैं।

त्वय्यव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसङ्कुलाः ।

यथा जले सञ्जिहते जलौकसोऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ॥ १५ ॥

tvayy avyayātman puruṣe prakalpita lokāḥ sa-pālā bahu-jīva-saṅkulāḥ yathā jale sañjihate jalaukaso 'py udumbare vā maśakā mano-maye

अर्थ: हे अविनाशी पुरुष, जिन्हें केवल मन से ही ग्रहण किया जा सकता है, आपके भीतर अपने पालकों और असंख्य जीवों से भरे लोक स्थित हैं — वे आपमें ऐसे विचरते हैं जैसे जल में छोटे जलचर, या उदुम्बर फल के भीतर मच्छर। (स्कन्ध 10, अध्याय 40, श्लोक 15)



अक्रूरजी उस विराट् रूप का स्मरण करते हैं जिसमें उपासक प्रभु का ध्यान करते हैं — अग्नि उनका मुख, सूर्य उनका नेत्र, समुद्र उनका उदर — और उस अविनाशी पुरुष के भीतर सारे लोक जल में छोटे जलचरों की तरह विचरते हैं (श्लोक 15)।

प्रभु के अवतारों को प्रणाम

उस विराटता से अक्रूरजी किसी निकटतर वस्तु की ओर आते हैं। प्रभु अपनी लीला के लिए जो भी रूप धारण करते हैं, वे कहते हैं, उनका स्मरण करने वालों के हृदय से शोक मिट जाता है और लोग आनन्द से उनका यश गाते हैं। एक-एक करके वे उन रूपों को प्रणाम करते हैं।

प्रलय के जल में विचरने वाले दिव्य मत्स्य को नमस्कार; मधु और कैटभ का अन्त करने वाले हयग्रीव को नमस्कार। मन्दराचल को धारण करने वाले विशाल कूर्म को नमस्कार; पृथ्वी के उद्धार की क्रीड़ा करने वाले वराह को नमस्कार। साधुओं का भय हरने वाले अद्भुत नृसिंह को नमस्कार; तीनों लोकों को नापने वाले वामन को नमस्कार। उद्धण्ड क्षत्रियों के वन को काटने वाले भृगुपति को नमस्कार; रावण का अन्त करने वाले रघुश्रेष्ठ को नमस्कार। वासुदेव और संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध — सात्वतों के रक्षक — को नमस्कार। और तब अक्रूरजी उन अवतारों को प्रणाम करते हैं जो अभी आए ही नहीं।

नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ।

म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥ २२ ॥

namo buddhāya śuddhāya daitya-dānava-mohine mleccha-prāya-kṣatra-hantre namas te kalki-rūpiṇe

अर्थ: दैत्यों और दानवों को मोहित करने वाले, शुद्ध भगवान् बुद्ध के रूप में आपको नमस्कार; और म्लेच्छप्राय हो चुके क्षत्रियों का अन्त करने वाले भगवान् कल्कि के रूप में आपको नमस्कार। (स्कन्ध 10, अध्याय 40, श्लोक 22)

उनके चरणों में शरण

जब अपना कहने को कुछ न बचा, तब अक्रूरजी वही एक काम करते हैं जो भक्त सदा कर सकता है: वे प्रभु के चरण पकड़ लेते हैं — और उसी क्षण वहाँ तक पहुँचने का कोई श्रेय लेने से इनकार कर देते हैं।

सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ।

पुंसो भवेद् यर्हि संसरणापवर्गस्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥ २८ ॥

so 'haṁ tavāṅghry-upagato 'smy asatām durāpaṁ tac cāpy ahaṁ bhavad-anugraha īśa manye puṁso bhaved yarhi saṁsaraṇāpavargas tvayy abja-nābha sad-upāsanayā matiḥ syāt

अर्थ: ऐसा होते हुए भी मैं आपके उन चरणों तक आ पहुँचा हूँ जो दुर्जनों को कभी नहीं मिलते; और इसे भी मैं केवल आपका अनुग्रह मानता हूँ। क्योंकि हे पद्मनाभ, जब किसी पुरुष के जन्म-मृत्यु के चक्र का अन्त निकट आता है, तभी सन्तों की सेवा से उसकी बुद्धि आपकी ओर मुड़ती है। (स्कन्ध 10, अध्याय 40, श्लोक 28)

दो प्रणाम शेष हैं। वे प्रभु को शुद्ध विज्ञान-स्वरूप, समस्त ज्ञान के स्रोत, जीव और प्रकृति दोनों के नियन्ता, अनन्त शक्तियों वाले परब्रह्म के रूप में प्रणाम करते हैं। और वे उनके चतुर्व्यूह को प्रणाम करते हैं — बुद्धि के अधिष्ठाता वासुदेव, सब प्राणियों के आश्रय संकर्षण, चित्त और मन के स्वामी प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। फिर वे वही एक वस्तु माँगते हैं जो उन्हें चाहिए।

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ।

हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥

namas te vāsudevāya sarva-bhūta-kṣayāya ca hṛṣīkeśa namas tubhyaṁ prapannaṁ pāhi mām prabho

अर्थ: वासुदेव आपको नमस्कार, और सब प्राणियों के आश्रय आपको नमस्कार; हे हृषीकेश, इन्द्रियों के स्वामी, आपको नमस्कार — हे प्रभो, आपके चरणों में गिरे हुए मुझ शरणागत की रक्षा कीजिए। (स्कन्ध 10, अध्याय 40, श्लोक 30)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. सृष्टि में कुछ भी अपने बल पर खड़ा नहीं। तत्त्व, मन, इन्द्रियाँ और उनके अधिष्ठाता देवता भी एक ही पुरुष के अंग हैं। जो भक्त संसार को ऐसे देखता है, वह उसकी अनेक शक्तियों से सौदा करना छोड़कर सीधे उनके स्रोत से बात करता है।
2. प्रभु इस जगत् के उपकरणों से नहीं जाने जाते। जड़ चेतन को नहीं जान सकता, और गुणों में बँधे ब्रह्मा भी उनसे परे को नहीं छूते। यह निराशा नहीं, विनम्रता है: वे तब जाने जाते हैं जब स्वयं प्रकट होते हैं, तब नहीं जब हम अपनी बुद्धि से उन्हें घेरना चाहते हैं।

3. उपासना चाहे कितनी बँटी हो, पहुँचती एक ही प्रभु तक है। यही अध्याय का हृदय है, और अक्रूरजी इसे बिना नरम किए कहते हैं। भीतर ध्यान करता योगी, अग्नि के पास बैठा ब्राह्मण, ज्ञान में लीन संन्यासी, चतुर्व्यूह की आराधना करता दीक्षित, शिव के बताए मार्ग पर चलता शैव, यहाँ तक कि किसी छोटे देवता का वह उपासक जो समझता है कि वह किसी और को पुकार रहा है — ये सब, वे घोषणा करते हैं, केवल परम प्रभु को ही भजते हैं, क्योंकि कोई दूसरा ईश्वर है ही नहीं जिसमें देवता बस सकें। नदियों को समुद्र जानने की आवश्यकता नहीं, वे फिर भी उस तक पहुँचती हैं। अक्रूरजी जो चाहते हैं वह विधि का नहीं, दृष्टि का परिवर्तन है: जिन्हें हम सदा से पूज रहे थे, उन्हें जानकर पूजना।

4. प्रभु के अवतार हमारे शोक को हर लेते हैं। वे उन रूपों को स्वेच्छा से, लीला के रूप में धारण करते हैं, और जो उनका गान करते हैं उनका दुःख धुल जाता है। अक्रूरजी की प्रणाम-माला स्वयं ऐसा ही स्मरण है, जो आगे कल्कि तक जाती है, जिनका आना अभी शेष है।

5. भक्ति स्वयं प्रभु का दान है। अक्रूरजी उन चरणों तक अपने पहुँचने को उपलब्धि की तरह प्रस्तुत नहीं करते। वे इसे कृपा कहते हैं, और वह साधन भी बताते हैं जिससे कृपा काम करती है: सन्तों की सेवा, जब जीव का लम्बा भटकना अपने अन्त के निकट हो।

एक भक्तिमय चिन्तन

हमें यहाँ जो द्रवित करता है, वह अक्रूरजी की प्रार्थना की दिशा है। ऐसा दर्शन पाकर जो लगभग किसी को नहीं मिलता, वे उससे अपने सौभाग्य का बखान नहीं करते। वे उससे कहते हैं कि प्रभु क्या हैं — और फिर उसी स्वर में, कि वे स्वयं क्या हैं: एक ऐसा मनुष्य जो स्वप्न को घर समझता है, जो पीठ पीछे नदी छोड़कर चमकती रेत की ओर दौड़ता है। किन्तु यही दूसरा भाग उस प्रार्थना को सच्चा बनाता है, और ऐसी निष्कपटता के बाद ही उनके हाथ प्रभु के चरणों पर बन्द होते हैं। यहाँ हर उस भक्त के लिए सान्त्वना है जिसका भीतरी जीवन उसकी पूजा से अधिक अस्त-व्यस्त है। अक्रूरजी योग्य होने की प्रतीक्षा करके शरण नहीं लेते; वे शरण लेते हैं क्योंकि वे योग्य नहीं हैं, और इसे भी अर्जित पुण्य नहीं, दी गई दया कहते हैं। जहाँ हमारी दुर्बलता उनके सामने साफ़ शब्दों में कही जाती है, वहाँ उनकी कृपा अपना काम आरम्भ कर चुकी होती है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज अक्रूरजी के क्रम में एक प्रार्थना करें। पहले स्तुति: प्रभु की महिमा की कोई एक बात ज़ोर से कहें — कि वे सबके मूल हैं, या कि उपासना का हर मार्ग उन्हीं में समाप्त होता है। फिर निष्कपट बनें: अपनी किसी एक आसक्ति का नाम लें जिसे आप मृगतृष्णा जानते हैं। फिर अपने सरलतम शब्दों में, बिना सौदे के, शरण माँगें — प्रार्थना को अपनी योग्यता पर नहीं, उनकी कृपा पर टिकाकर। अन्त में धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

दशम स्कन्ध का यह चालीसवाँ अध्याय एक ही स्तोत्र में एक भक्त का पूरा हृदय हमें सौंपता है। अक्रूरजी समस्त कारणों के कारण को प्रणाम करते हैं, तत्त्वों और देवताओं को उनके भीतर रखते हैं, घोषणा करते हैं कि उपासना की हर धारा उसी एक सागर में मिलती है, और मत्स्य से कल्कि तक उनके अवतारों को नमन करते हैं। फिर वे अपना मोह स्वीकार करते हैं, और पाते हैं कि जिन चरणों तक वे पहुँचे हैं वे कृपा से मिले हैं। हम उनसे यह सीखें कि स्तुति विराट् हो, अपने विषय में कथन सच्चा हो, और अन्त वही पुकार हो — कि प्रभु अपने चरणों में गिरे हुआ की रक्षा करें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण संस्करण), दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), चत्वारिंश अध्याय, ‘अक्रूरजी की स्तुति’।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।



ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-40-the-prayers-of-akrura-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट